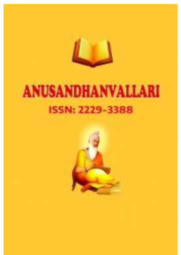

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

जैन पांडुलिपियों की लेखन शैली और लिपि का ऐतिहासिक विकास

दीक्षा, डॉ पूनम रानी

1-शोधार्थी, डिपार्टमेंट ऑफ विजुअल एंड परफोर्मिंग आर्ट्स, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़

2-निर्देशिका, डिपार्टमेंट ऑफ विजुअल एंड परफोर्मिंग आर्ट्स, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़

Email- deekshatmu@gmail.com, poonam.rani@mangalayatan.edu.in

सारांश

भारतीय चित्रकला के व्यापक परिप्रेक्ष्य में जैन चित्रकला का एक निजी वैशिष्ट्य है। इसके प्राचीन अवशेष अजंता, बाघ, बादामी व एलोरा आदि की गफु ाओ ं में भित्तियों और छतो ं के अधस्तल पर किए गए अंकन के रूप मे ं तो मिलते ही हैं, ताड़पत्रीय एवं कागज की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों, पोथियो ं में यह कला विपुल मात्रा मे ं उपलब्ध है – परिमाण में भी और गुणवत्ता में भी। इनके अवलोकन से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जैन चित्रकला मात्र कला के लिए नहीं थी, अपितु कला–रसिको ं के जीवन का एक अंग भी बन चुकी थी। कला में जब दर्शन का पुट द` दिया जाता है तो अध्यात्म की छटा बिखरने लगती है। ऐसा ही कुछ हमारे प्राचीन जैन मनीषी साहित्यकारों और कलाकारो ं न` किया कि जीवन–दर्शन की वह छटा छलक उठी और ताड़पत्रो ं और पोथियो ं के पन्नों पर अपनी अमिट छाप छोड़ गई।

जैन चित्रकला से सम्बन्धित पाण्डुलिपियो ं पर सर्वप्रथम 1913 ई. मे ं डब्ल्यु हटमैन का 'बैसलन आरकाइब्ज' में 'मिनिएचरेन जम जिनचरित' नामक लखे ा प्रकाशित हुआ[1], जो कि बैरलिन मे ं स्थित दो कल्पसूत्रों पर आधारित तथा चित्रित था। एक वर्ष पश्चात् ही 1914 ई. मे ं नाहर एण्ड घोष द्वारा 'जैन ऐपीटोम ऑफ जैनिज्म' प्रकाशित किया गया[2]। इसी वर्ष डॉ. आनन्द कुमार स्वामी की दृष्टि भी जैन चित्रो ं की ओर आकृष्ट हुई। उन्होनं` एक लखे ा[3] निजी संग्रह की तीन पाण्डुलिपियो ं की महत्ता तथा विशेषताओ ं को अंकित करते हुए लिखा है, जिसके अन्तर्गत एक पाण्डुलिपि 'कल्पसूत्र' 1497 ई. की थी। अन्य दो पाण्डुलिपियाँ 'कालकाचार्या कथा' की थी। 1922 ई. मे ं प्रकाशित जे.एस. कुदालकर के लखे ा[4] द्वारा कला–रसिक शोधकर्त्ताओ ं को पाटन के विभिन्न शास्त्र–भण्डारो ं तथा पुस्तकालयो ं आदि में स्थित असंख्या पाण्डुलिपियो ं की सूची दी गई थी। इस क्षेत्र में आगामी शोध–खोज इसका ज्वलन्त प्रमाण है। इसके पश्चात जैन कला के मुख्य शोधकर्त्ता डॉ. कुमार स्वामी की 1923 ई. में पुनः एक छाटेी–सी पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन ट ू इण्डियन आर्ट' प्रकाशित हुई। 1924 ई. में डॉ. कुमार स्वामी ने 'दी कैटेलॉग ऑफ दी इण्डियन कलैक्शन इन दी म्यूजियम ऑफ फाइन आटस् ि', वोस्टन के चतुर्थ भाग में प्राचीन जैन चित्रकला के उद्गम, उत्कर्ष तथा समापन को सुव्यवस्थित रूप में वर्गीकृत किया। जैन चित्रकला के महत्त्व का बोध कराते हुए उद्घोषित किया कि भारतीय चित्रकला की लुप्त कड़ियाँ जैन चित्रकला के रूप में सुरक्षित हैं। प्रसिद्ध विद्वान अजित घोष न` 1927 ई. मे ं 'दी डेवलपमणे ट ऑफ जैन पेटिंग ं' नामक लखे ा में प्राचीन जैन चित्रकला की कुछ अन्य पाण्डुलिपियो ं का साहित्यिक एवं कालक्रमिक दिग्दर्शन कराकर जैन चित्रकला की प्रगति को नई चेतना तथा स्फूर्ति प्रदान

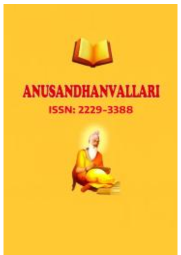

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

की। 1928 ई. मे ं नारमन ब्राउन द्वारा अन्वेषित एवं श्वेताम्बर धर्म से सम्बन्धित पुरानी पाण्डुलिपियो ं के चित्रो ं को वैज्ञानिक ढगं से प्रकाशित किया गया।

मुख्य शब्दरू जैन पांडुलिपियों, ऐतिहासिक विकास, शैली.

परिचय

कालान्तर में इस क्षेत्र में कार्यरत होकर मुनिश्री पुण्यविजय, ओ.सी. गांगुली, साराभाई मणिलाल नवाब, यू.पी. शाह, एम.आर. मजूमदार व हरमन गोयट्ज आदि विद्वानो ं न े गुजरात तथा राजपूताना आदि अनके प्रदेशो ं में भ्रमण कर विभिन्न पाण्डुलिपियो ं व पट्टिकाएँ आदि अमलू य सामग्री की शोध–खोज की तथा अनके शोध–पत्र प्रकाशित कराकर चित्रकला के महत्त्वपूर्ण अध्यायो ं को उद्घाटित किया। किन्तु श्री नवाब के अन्वेषण जैन चित्रकला के लिए अनपु म दने सिद्ध हुए। उन्होनं े गुजरात प्रान्त के सभी जैन शास्त्र–भण्डार तथा निजी संग्रहालयो ं का निरीक्षण कर श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित पाण्डुलिपियो ं आदि की खोज की एवं विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की जिसके परिणामस्वरूप चित्रो ं के नन्दतिक पक्ष के वर्णन और मूल्यांकन को प्रथम बार महत्त्व प्राप्त हुआ। कुछ वर्ष पूर्व डॉ. श्रीमती सरयू दोषी न े अपन े शोध ग्रन्थ में राजस्थान एवं गुजरात के विभिन्न शास्त्र भण्डारो ं से प्राप्त दिगम्बर जैन पाण्डुलिपि के चित्रो ं का विश्लेषण एवं प्रतिपादन किया है। जैन समाज में लखे ान प्रणाली का प्रयोग बहुत प्राचीन पाया जाता है। तथापि डेढ– दो हजार वर्ष से पूर्व के लिखित ग्रन्थो ं के स्पष्ट उदाहरण प्राप्त न होने का एक बड़ा कारण यह हुआ कि विद्या प्रचार का कार्य प्राचीनकाल मे ं मुनियो ं द्वारा विशेष रूप से होता था। अतः जैन आगमो ं का ज्ञान जैन साधुओ ं की स्मृति मे ं ही सुरक्षित रहा और परम्परा मे ं गुरुओ ं द्वारा शिष्यो ं का मौलिक रूप से प्रदान किया जाता रहा। लेकिन दुर्भिक्षो ं और संक्रामक रोगो ं से जब ये आत्मज्ञानी कालग्रस्त होते तब इन धार्मिक आगमो ं का ज्ञान भी उन्हीं के साथ अवश्य क्षीण होता जाता। कालान्तर में जैन आत्मज्ञान की शिक्षाओ ं का प्रवाह इतना टटू ने लगा कि उसे निरन्तर बनाय े रखना और उसके मलू –पाठ को भ्रष्ट होने से बचाये रखना असम्भव हो गया।[5] फलतः जैन समुदाय न े अपनी पवित्र ज्ञान–निधि की सुरक्षा के लिए अनके प्रकार के प्रयास किये। पाटिलीपुत्र में जैन साधुओ ं की संगीति आयोजित की गई। जहाँ जैन सिद्धान्त साहित्य को क्रमबद्ध रूप से संचित कर लिपिबद्ध किया गया।[6] वीरनिर्वाण की 10वीं शताब्दी में आकर पुनः आगमो ं की अस्त–व्यस्त अवस्था हो गई थी। अतएवं मथुरा में स्कंदिल आचार्य और उसके कुछ पश्चात् वलभी में दवे र्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में आगमों की वाचनाएँ की गई। 'पाटलिपुत्रीय व माथुरीय वाचनाओ ं के ग्रन्थ तो अब नहीं मिलते, किन्तु वलभी वाचना द्वारा संकलित आगमो ं की प्रतियाँ तब से निरन्तर ताड़पत्र और तत्पश्चात् कागजो ं पर उत्तरोत्तर सुन्दर कलापण् ूर् रीति से लिखित मिलती है और वे जैन लिपिकला के इतिहास के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।'[7] जैन मन्दिरों में भित्ति–चित्रो ं की कला का विकास 11वीं शताब्दी तक विशेष रूप से पाया जाता है। तत्पश्चात् चित्रकला का आधार ताड़पत्र बना। भित्ति–चित्रो ं की अपेक्षा यद्यपि यह कार्य सहज था तथापि लालित्य व स्थायित्व की दृष्टि से भित्ति–चित्रो ं की बराबरी नही ं कर सका। ताड़पत्रो ं की सचित्र पाण्डुलिपियाँ पूर्वी भारत मे ं बौद्ध धर्म की महायान शाखा से सम्बन्धित है। जबकि पश्चिमी भारत से प्राप्त चित्रित पाण्डुलिपियाँ मख्ु यतः जैनधर्म से सम्बन्धित है। अतः सम्भव है कि जैन ग्रन्थो ं को चित्रित करने का विचार धर्म शासको ं द्वारा बौद्ध–धर्मी ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियो ं से लिया गया हो।[8] किन्तु सामान्य रूप से पूर्वी भारत की सचित्र पाण्डुलिपियो ं से आकार आदि में साम्य रखत े हुए भी चित्रण में महत्त्वपूर्ण अन्तर परिलक्षित होता

है। पश्चिम भारतीय स्कूल के चित्र सामान्य, रूपहीन व उनकी सुलखे ाता अपेक्षाकृत निम्नकोटि की है। उनके सूक्ष्म अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि अस्पष्ट मान चित्रावली कोणिक रेखाओ ं का प्रयोग एवं मानवाकृतियो ं का रूढिग़ त रखे ांकन होने के कारण चित्रांकन सुडौल, सजीव व स्पष्ट उभार लिए नहीं होता था। तथापि ये कलाकृतियाँ आकर्षक,

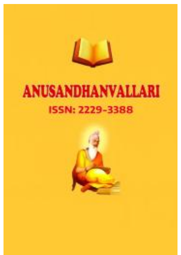

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

संग्रहणीय तथा शोध का उत्कृष्ट विषय हैं। ग्रन्थ–लेखन के साथ सन्दर्भ संगत चित्रो ं के अंकन से एक ओर जैन पाण्डुलिपियो ं की शोभा बहुगुणित हुई, वहाँ दसू री ओर कथावस्तु रुचिकर व सरल बोधगम्य हो गई। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का चित्रांकन ग्रन्थ–लेखको ं अथवा लिपिको ं की चित्रकला के प्रति रुचि का भी परिचायक सिद्ध हुआ है। सचित्र पाण्डुलिपियो ं के क्रम में 'इॅन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना'[9] मे ं उल्लखे ा मिलता है कि पुस्तको ं के पाठ को विविध चित्राकृतियो ं से सजाया गया हो तथा सजावट में ग्रंथ के प्रथम अक्षर को विशद् आकार दते े हुये आलकं ारिक बनाया गया हो, विषयानुरूप चित्रो ं का संयोजन स्थापित किया गया हो, ऐसी पुस्तक को हस्तलिखित पाण्डुलिपि या सचित्र पाण्डुलिपि की संज्ञा दी जा सकती है। ग्रंथो ं के लखे ान की पद्धति आकार–प्रकार और लेखन सौन्दर्य में भी जैन लखे ान कला का अपना विशिष्ट स्थान है। कुछ प्रतियाँ तो वास्तव में लखे ान, चित्र और सौन्दर्य के लिये अनुपम है। आगम ग्रंथो ं के लेखन में सोने और चाँदी तक का प्रयोग किया गया है। भारत में 'अपभ्रंश शैली' के चित्र जो 11वीं से 16वीं शताब्दी तक चित्रित हुए मुख्यतः हस्तलिखित ग्रन्थो ं में प्राप्त होते हैं। डॉ. रामनाथ के अनुसार ''ये चित्र जैन धर्म सम्बन्धी पाण्डुलिपियो ं में पत्र के बीच–बीच में छोड़ े हुए चौकोर स्थानो ं में बन े हुए मिलत े है।''

सचित्र जैन पाण्डुलिपियों के रचनाकाल को डॉ. मोतीचन्द ने तीन भागो ं में विभक्त किया है।
ताड़पत्र काल – 1100–1400 ई.
कागज काल – 1400–1600 ई.
उत्तर काल – 16वीं शताब्दी के पश्चात्
ताड़पत्रीय परम्परा एवं चित्रगत वैशिष्ट्य चित्रगत शैली के आधार पर पश्चिम भारतीय स्कूल की ताड़पत्रीय सचित्र पाण्डुलिपियो ं का विभाजन दो वर्गों में किया गया है–प्रथम वर्ग (1100–1350 ई.) और द्वितीय वर्ग (1350 – 1450 ई.) प्रथम वर्ग (1100–1350 ई.) इसके अन्तर्गत वे पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनका निर्माण गुजरात में साले कं ी राजाओ ं के संरक्षण मे ं हुआ था।[10] गुजरात की प्राचीन राजधानी पाटन थी, जिसे 'अनहिलवाड़ा' भी कहा जाता था। डॉ. कुमार स्वामी तथा महे ता ने ताड़पत्र पर चित्रित प्राचीनतम पाण्डुलिपि कल्पसूत्र को माना है। इसका रचनाकाल 1237 ई. के लगभग निश्चित होता है।[11] डॉ. गोयट्ज के मतानुसार सबसे प्राचीन चित्रित कृति ताड़पत्र पर अंकित 'निशीथ–चूर्णि' है, जिसकी रचना सिद्धराज जयसिंह के राज्यकाल में 1100 ई. मे ं हुई थी। यह पाण्डुलिपि पाटन के जैन भण्डार मे ं स्थित हैं। इसमे ं चित्रो ं के नाम पर कुछ बेल–बूट े एवं कुछ पशु– आकृतियाँ हैं। डॉ. रामनाथ न े पाटन भण्डार में सुरक्षित 'भगवती सूत्र' का उल्लखे ा किया है, जो कि 1062 ई. की है। किन्तु इसमे ं मात्र अलकं रण है, चित्र नहीं हैं।[12]
इसके अतिरिक्त श्री खण्डालावाला तथा डॉ. सरयू दोशी ने इससे भी पूर्व 1060 ई. की 'ओघ–निर्युक्ति' एवं 'दश–वैकालिक–टीका' नामक दो ताड़पत्रीय ग्रन्थो ं का उल्लखे ा किया है।[13] ये भी इस समय जैसलमरे के जैन भण्डार में स्थित हैं। ओघ–निर्युक्ति के अन्तिम चित्रो ं में श्री का एक चित्र, कामदेव द्वारा बाण छोड़े जान े का एक संजीव चित्र हाथियो ं के सुदक्षतापूर्ण अंकित कुछ चित्र हैं। (चित्र–1) तत्पश्चात् मठ नियमों पर आधारित 'पिण्ड–नियुक्ति' नामक पुस्तक का उल्लेख किया हो, जिसमे ं मात्र एक हाथी का चित्रांकन है।

ताड़पत्रीय पाण्डुलियो ं के अन्तर्गत 'षट्–खण्डागम' (1112 ई.) तथा 'महा–बन्ध' (1112–20 ई.) और 'कषाय–पाहुड–इन' आरम्भिक दिगम्बर जैन पाण्डुलिपियो ं का भी उल्लेख मिलता है जो कर्नाटक स्थित मडू बिद्री के जैन सिद्धान्त–बसदि के संग्रह में सुरिक्षत हैं।[14] ये कर्म–सिद्धान्त से सम्बन्धित एवं मलू प्राकृत भाषा के ग्रन्थ हैं। इन पाण्डुलिपियो ं मे ं चित्रों की संख्या अत्यन्त सीमित है। षट्–खण्डागम में दो महा–बन्ध में सात तथा कषाय–पाहुड मे ं मात्र चौदह चित्र हैं। इन सभी पाण्डुलिपियो ं के चित्रों मे ं ज्यामितीय अंकन अथवा पत्र–पुष्पो ं की पट्टिकाएँ युक्त आलकं ारिक पदक तथा दवे ी–देवताओं, साधुओं, पाण्डुलिपियो ं के दानदाताओ ं अथवा उपासको ं के चित्र अंकित हैं।
सन् 1127 ई. में रचित 'ज्ञान–सूत्र' की एक पाण्डुलिपि खम्भात स्थित शान्तिनाथ–मन्दिर के भण्डार मे ं है। जिसमें मात्र दो चित्र हैं। एक चित्र में त्रिभंग मुद्रा में सरस्वती की आकर्षक आकृति है। देवी चतुर्भुज है। ऊपर के दोनों हाथों में कमल पुष्प तथा निचल े हाथो ं में अक्षमाला व पुस्तक है। समीप में एक हंस व उपासना की मुद्रा में दो साधु भी चित्रित हैं। (चित्र–2) इस पाण्डुलिपि के बाद 'दश–वैकालिक–लघुवृति' (1143 ई.) का स्थान आता है। इसमे ं मात्र एक ही चित्र है जिसमे ं दो

साधु एवं एक श्रावक का चित्र अंकित है। इसी भण्डार में 1241 ई. की लिपिबद्ध 'नेमिनाथ–चरित' नामक एक पाण्डुलिपि है, जिसमे ं पद्मासीन अंबिका के एक आकर्षक चित्र सहित चार अन्य चित्र हैं।

चित्र 1: श्री और कामदेव, ओघ–निर्युक्ति, 1060 ई., ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि, जैसलमेर भण्डार

श्रृंगार प्रधान मुक्तक काव्य–

जैन साहित्य कोई श्रृंगार निरूपण का काव्य नहीं है फिर भी कहीं कहीं जैन साहित्य के काव्य में श्रृंगार वर्णन दिखाई दे जाता है। अब्दुल रहमान कृत संदे ा रासक श्रृंगार प्रधान मुक्तक काव्य कहा जा सकता है क्यों कि इसमें अन्य साहित्य की तुलना में अधिक श्रृगार वर्णन है।

छन्द व व्याकरण आधारित भास्त्रीय ग्रंथ–

जैन साहित्य में छन्दों का भास्त्रीय विवेचन करने वाले ग्रंथ की भी रचना हुई है। स्वयंभू कृत स्वयंभू छन्द, हेमचन्द्र कृत छन्दोनु ाासन, हेमचन्द्र भाब्दानु ाासन आदि ग्रंथों को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। इस तरह यह तो स्पश्ट है कि जैन साहित्य में अनेक प्रकार की रचनाएं रचित हुईं तथा अनेक कवियों ने भिन्न भिन्न विशयों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। जैन साहित्य के प्रमुख कवियों में जिन के नाम गिनाए जा सकते हैं वे हैं–स्वयंभू जिनकी अनेक रचनाएं है पउम चरिउ, रिट्ठणेभि चरिउ, स्वयंभू छन्द, पंचमि चरिउ। पुश्प दन्त की रचनाएं– महापुराण, जयकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, धनपाल की रचना–भविसयत बाहुबलि रास, जिनधर्म सूरि की स्थूलि भद्र रास, आसग्र– चन्दन बाला रास, विजय सेन सूरि–रेवंतिकहा, जोइंदु की परमात्म प्रका ायोगसार मेरुतुंग की प्रबन्ध चिंतामणि, अब्दुल रहमान – संदे ा रासक, देवसेन– श्रावकाचार, ाालि भद्रसूरि की भरते वर विजयसेन सूरि की रेवंत गिरि रास, सुमति गणि की पेमि नाथ रास, राम सिंह की पाहुड दोहा, सोम प्रभ सूरि की कुमार पाल प्रतिबोध, हेमचन्द्र की हेमचन्द्र भाब्दानु ाासन, छन्दोनु ाासन, कुमारपाल चरित, जिनदत्त सूरि चर्चरी आदि का नाम लिया जा सकता है। उपरोक्त कवियों ने जैन साहित्य में महत्व पूर्ण योग दान दिया है।4 साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के उपरान्त यह जानने की आव यकता है कि जैन साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियां क्या हैं, जिनका परवर्ती साहित्य पर भी प्रभाव पडा।

जैन साहित्य की प्रवृत्तियां–

1 बाहय–उपासना, धर्म की रूढ ढ परम्पराओं का विरोध–

जैन धर्म भी बौद्ध धर्म की तरह वैदिक धर्म के विरोध में ही प्रकट हुआ। अनेक आलोचक मानते हैं कि जैन और बौद्ध धर्म वैदिक धर्म की प्रतिकिया है। यह सत्य भी है क्योंकि जैन धर्म में अनेक मुख्य सिद्धान्तों का वैदिक धर्म के साथ मेल नहीं

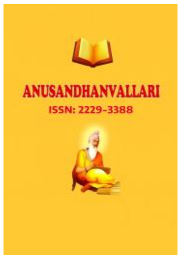

Anusandhanvallari

Vol 2025, No.1

January 2025

ISSN 2229-3388

खाता। जैन साहित्य में हिन्दु समाज मे ं प्रचलित बाह्य–उपासना, मन्दिर, तीर्थ–यात्रा, मूर्तिपूजा, जातिपाति आदि का डट कर विरोध किया गया हैं।जैन धर्म में मनुश्य के लिए चारित्रिक गुणों व मन की भुाद्धता को ही अनिवार्य माना हे। जैन साहित्य में गृहस्थ जीवन की निंदा की है परन्तु ऐसे कुछ एक रहस्यवादी कवियों ने ही किया है ऐसे कवियों का मानना है कि गृहस्थ जीवन साधक के मार्ग में बाधक बनता है, परन्तु उन्होंने कही भी धर्म का पालन करते हुए गृहस्थ आश्रम को त्याज्य नहीं माना है। धन, देह, सांसारिक बंधनों आदि को जैन धर्म में तुच्छ माना है। इनकी न वरता को देखते हुए इन से दूर रहने का पराम र्ा जैन धर्म में है–

देउलदेवु वि सत्थु गुरु है तित्थु वि वेउ विकब्बु।

बच्छु जु दीसइ कुसु नियउ इंधणु होसइ सब्बु।।

2 रहस्यवादी विचार धारा–

जैन साहित्य रास भौली में रचित है फिर भी अनेक ऐसी रचनाएं ह ैं जिनमें रहस्यवादी विचार धारा के प्रमाण मिलते हैं। ऐंसे कवियों ने भारीर में ही परमात्मा का वास बताया है और उस ई वर को परम समाधि की अवस्था में ही प्राप्त करने का वर्णन किया गया हे। इन्होंने अपने भारीर को ही मन्दिर कहा है,तथा तीर्थ स्थल को महत्व नहीं दिया है। उनका मत है कि जिस प्रकार लकडी में अग्नि छिपी रहती है, पुश्प में पराग मधु छिपा रहता है, उसी प्रकार हमारे भारीर में ही परमात्मा का निवास है–

जम वइसाणर, कट्ठ महिं, कुसुमइ परिमलु होइ।

तिह तेह मइ वसइ वि, आण्दा बिरला बुझइ कोइ।।

3 आत्मानुभूति –

जैन कवियों ने आत्म अनुभूति पर जोर दिया हैं और उसे ही जीवन का परम लक्ष्य माना है। आत्म अनुभव के लिए भुाभ अ ाुभ कर्मों के क्षय करने की आव यकता बताई गई है। आत्मा के ज्ञान से परमात्मा का ज्ञान हो सकता है। अधिको ा कवियों ने भोग की जगह त्याग, भाास्त्र ज्ञान के स्थान पर आत्म ज्ञान व कर्मकाण्ड की जगह आत्मानुभूति को अधिक महत्व दिया है–

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिप अण्णु जि गुरुअ म सेवि।

अण्णु जि देउ म चिति तुंहु, अप्पा विमल मुएवि ं

4 जैन धर्म का प्रतिपादन–

इस जैन काव्य में जैन धर्म के सिद्धान्त नियम आदि भरे पडे हैं। रास काव्य जैसे चन्दन बाला रास, स्थूलि भद्र रास, भरते वर बाहुबलि रास आदि में तो जैन धमे ा के महत्व को सिद्ध करने के लिए धर्मों के पौराणिक व ऐतिहासिक पात्रों को जैन धर्म का अनुयायी बनने के बाद ही भाान्ति व मोक्ष का अधिकारी दिखाया गया हे। भरते वर बाहुबलि रास इसका उदाहरण है।

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

5 नर और नारी का रूप वर्णन–

जैन साहित्य में नर और नारी के रूपों का विस्तृत चित्रण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। वि ोशकर नारी के रूप चित्रण में कवियों ने अधिक अभिरुचि दिखाई है। इसके लिए उन्होंने प्राकृतिक उपमानों का भी प्रयोग किया हे। उदाहरण स्वरूप पउम सिरि चरिउ में पद्म श्री के चन्दन बाला रास में चन्दायन के रूप सौंदर्य का सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रकार जैन साहित्य में पुरुश रस का सुन्दर वर्णन भी मिलता है। कहीं कहीं भद्दे एवं कुरूप पुरुशों के रूपों का वर्णन भी मिलता है।

6 प्रकृति चित्रण–

प्रकृति ने मनुश्य को सदैव आकर्शित किया है। जैन कवि भी इससे बच नहीं सके हैं। उनके काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन हुआ हे। जैन कवियों ने काव्य मे रहस्यवादी रूप, उपदे ाका रूप, मानवीकरणरूप आदि का भी चित्रण किया है।6 प्रकृति के आलम्बन रूपों का सबसे कम तथा पृश्ठ भूमि के रूप में सबसे अधिक प्रकृति–वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप, मानवीकरणरूप, रहस्यवादी रूप, उपदे ाका रूप, आदि का भी वर्णन किया है। जैन कवियों ने इस तरह भाव के अनुकूल वातावरण की सृश्टि की है–

डोला तोरण वारे पई हरे–पइट्ठ वसंतु वसंत सिरी–हरे।

सइरूइ–वासहरेहि ख–गेउरन–आवसिउ महु अरि अन्तेपुरु।

कोयल का मिणीउ उज्जाणेहिं सुय सामंत लयाहर थाणेहि।

7 प्रेम के विविध रूप–

जैन साहित्य में कवियों ने प्रायः प्रेम तत्व को अपने काव्य में स्थान दिया है, परन्तु ध्यान से देखा जाए तो पता चलता है कि कवियों ने विविध रूपों को अपनाया है। किसी वि ोश सीमा में जैन कवि नहीं रहे हैं। उनके काव्य में विवाह के लिए प्रेम को स्वीकार किया गया हैतो विवाह के बाद असामाजिक प्रेम को भी स्वीकार किया है। उदाहरण के रूप में चन्दनबाला रास को लिया जा सकता है।राजा भातनीक का सेनापति चन्दनबाला के साथ एक पक्षीय प्रेम करता है, जिसमें वासना की मात्रा अधिक है। इसी तरह प्रेम के अन्य रूप भी जैन काव्य में मिलते हैं।

8 विरह–वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति–

जैन साहित्य के चरित काव्यों में तथा अन्य कुछ खण्ड काव्यों जैसे संदे ारासक आदि में विरह वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। अधिकां ा कवियों ने नारी की ही विरह वेदना का अधिक चित्रण किया है। पुरुशों के विरह वर्णन में कवियों ने अधिक रुचि नहीं दिखाई है। यह जैन कवियों की वि ोशता ही कही जाएगी कि जैन कवियों ने विरह वर्णन में सजीवता, स्वाभाविकता और छन्द गति तीनों का अद्भुत सामंजस्य किया है। सन्दे ारासक तो विरह वर्णन की अनूठी कृति है। 7 एक मार्मिक सन्दे ा अपने पति को भेजते हुए नायिका कहती है कि जिन अंगों के साथ तुमने विलास किया है,आज वे ही अंग विरह द्वारा जलाए जा रहे है।

9 रस निरूपण–

जैन साहित्य में वैसे तो सभी रसों का सुन्दर प्रयोग हुआ है परन्तु उसमें भी श्रृंगाररस, ाान्तरस, और करुणरस की प्रधानता है। जैन धर्म प्रचार प्रसार जैन साहित्य का मुख्य उद्‌द य है तथा इस दृश्टि से अधिकां ा स्थलों पर करुणरस भी अन्ततः भाान्तरस में परिवर्तित हो गया है। विप्रलम्भ श्रृंगार के भेदों, मान, पूर्वराग, प्रवास, आदि के अनुरूप नायक–नायिका की द ाा का वर्णन किया गया है। संयोग श्रृंगार की तुलना में विप्रलंभ श्रृंगार का अधिक विस्तार से वर्णन हुआ है। सन्दे ा रासक तो विप्रलंभ श्रृंगार पर आधारित रचना है। इसमें करुण रस का एक उदाहरण देखिए–

ठाहि ठाहि बिमि सद्धु सुयरु अवहारी मणु।

णिसुणि किंपी जं जंपउं पहिप पसिज्जि खणु।।8

10 भाशा एवं भौली जैन साहित्य की भाशा अपभ्रं ा है परन्तु इसकी प्रारम्भिक रचनाओं को देख कर लगता है कि प्रारम्भिक रचनाओं में प्रयुक्त अपभ्रं ा भाशा लोक भाशा के कहीं अधिक निकट हे। इसे अवहटट भाशा के नाम से जाना जाता है। जैन साहित्य की जो प्रबन्धात्मक रचनाएं हैं उनमें भाुद्ध साहित्यिक अपभ्रं ाभाशा का प्रयोग हुआ है। इन की भाशा नियमों–उपनियमों में जकडी सी प्रतीत होती है जबकि आरम्भिक रचनाओं में अपभ्रं ा भाशा स्वछन्द सी प्रतीत होती है। इस भाशा में ध्वन्यात्मक भाब्दों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए भंवरे की गुंजन के लिए कवि ने गुमगुंमत निरर्थक भाब्द का सुन्दर प्रयोग किया है जो अन्यत्र नहीं मिलता। जैन साहित्य की भाशा की एक और वि ोशता है कि चरित काव्य में और कथाप्रधान काव्य में कडवक भौली का प्रयोग हुआ है। जैन धर्म प्रचार में जैन कवियों ने उपदे ाात्मक भौली का प्रयोग किया है। आध्यात्मिक विचारों के लिए जैन कवि प्रायः प्रतीकात्मक भौली का प्रयोग करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण देखिए–

पंच बलद्‌द णं रक्खियई णायण वणु ण गओसि।

अप्पुण जाणिउ णवि परुवि एमइ पव्वइ ओसि।।

11 छन्द और अलंकार योजना एवं काव्यरस–

जैन साहित्य में अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। स्वयंभ ू कृत स्वयंभू छन्द तथा हेमचन्द्र कृत छन्दानु ाासन में तो अपभ्रं ा छन्दों का भाास्त्रीय वि लेशण किया गया है। अन्य ग्रथों में वदनक, अडिल्ल, विलासिनी, स्कन्धक, दोहा, चउपइय, उल्लाला आदि अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। जैन साहित्य में काव्य के दो रूप मिलते हैं। प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में केवल चरित काव्य तथा खण्डकाव्य ही मिलते हैं। इसमें महाकाव्यों का अभाव दिखाई देता है। 9 मुक्तक काव्यों में दोहों के द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्त और नियम उपदे ा विधि से बताए गए हैं। इसके अतिरिक्त श्रृंगार वर्णन में भी दोहा बद्ध मुक्तक काव्य प्राप्त होता है।

ताड़पत्रीय पाण्डुलियो ं के अन्तर्गत 'षट्–खण्डागम' (1112 ई.) तथा 'महा–बन्ध' (1112–20 ई.) और 'कषाय–पाहुड–इन' आरम्भिक दिगम्बर जैन पाण्डुलिपियो ं का भी उल्लेख मिलता है जो कर्नाटक स्थित मडू बिद्री के जैन सिद्धान्त–बसदि के संग्रह में सुरिक्षत हैं।[14] ये कर्म–सिद्धान्त से सम्बन्धित एवं मलू प्राकृत भाषा के ग्रन्थ हैं। इन पाण्डुलिपियो ं मे ं चित्रों की

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

संख्या अत्यन्त सीमित है। षट्–खण्डागम में दो महा–बन्ध में सात तथा कषाय–पाहुड मे ं मात्र चौदह चित्र हैं। इन सभी पाण्डुलिपियो ं के चित्रों मे ं ज्यामितीय अंकन अथवा पत्र–पुष्पो ं की पटि्टकाएँ युक्त आलकं ारिक पदक तथा दवे ी–देवताओं, साधुओं, पाण्डुलिपियो ं के दानदाताओ ं अथवा उपासको ं के चित्र अंकित हैं।

सन् 1127 ई. में रचित 'ज्ञान–सूत्र' की एक पाण्डुलिपि खम्भात स्थित शान्तिनाथ–मन्दिर के भण्डार मे ं है। जिसमें मात्र दो चित्र हैं। एक चित्र में त्रिभंग मुद्रा में सरस्वती की आकर्षक आकृति है। देवी चतुर्भुज है। ऊपर के दोनों हाथों में कमल पुष्प तथा निचल` हाथो ं में अक्षमाला व पुस्तक है। समीप में एक हंस व उपासना की मुद्रा में दो साधु भी चित्रित हैं। (चित्र–2) इस पाण्डुलिपि के बाद 'दश–वैकालिक–लघुवृति' (1143 ई.) का स्थान आता है। इसमे ं मात्र एक ही चित्र है जिसमे ं दो साधु एवं एक श्रावक का चित्र अंकित है। इसी भण्डार में 1241 ई. की लिपिबद्ध 'नेमिनाथ–चरित' नामक एक पाण्डुलिपि है, जिसमे ं पद्मासीन अंबिका के एक आकर्षक चित्र सहित चार अन्य चित्र हैं।

चित्र 2ः सरस्वती, ज्ञानसूत्र, 1127 ई., ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि, शान्तिनाथ भण्डार, खम्भात

इन आरम्भिक ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियो ं में तो चित्रो ं की संख्या सामान्यतः बहुत कम है लेकिन 1288 ई. की 'सबाहु–कथा' (संघवी भण्डार, पाटन में सुरक्षित) पाण्डुलिपि में तइे ंस चित्र हैं। इसमे ं नेमिनाथ के जीवन की घटनाओ ं का चित्रांकन है। इनमे ं चट्टानों, वृक्षो ं और जंगल के पशुओ ं को प्रकृति–चित्रण के अन्तर्गत दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त बाद में की गई खोज के आधार पर डॉ. रामनाथ न` 'अंगसूत्र', 'कथासरितसागर' व 'त्रिषष्ठिशालाकापुरुषचरित' आदि ग्रन्थो ं का रचनाकाल भी उपर्युक्त प्रथम वर्ग की अवधि के अन्तर्गत ही निर्धारित किया है।[16]
द्वितीय वर्ग (1350–1450 ई.) स्थूल रूप से इसका प्रारम्भ गुजरात प्रान्त मे ं मुगल शक्ति की स्थापना से सम्बद्ध किया जा सकता है। कोई भी पाण्डुलिपि 1370 ई. से पूर्व की अवधि की उपलब्ध नही ं है। 1427 ई. की एक पाण्डुलिपि इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लदं न में स्थित होने का वर्णन मिलता है।
इस वर्ग के चित्रो ं में तकनीकी तथा सौन्दर्यात्मक प्रगति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। कथाएँ अधिकतर तीर्थंकर तथा

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

देवी–देवताओं के जीवन से सम्बन्धित हैं। रेखांकन में लय, सोने और चाँदी के बहुमूल्य रंगों का अधिकाधिक उपयोग, महीन रेखाओं का सौन्दर्य तथा धर्म एवं वैराग्य से ओतप्रोत चित्रों द्वारा कला और माधुर्य का उत्तम दिग्दर्शन, जैन कला के पूर्वनिर्मित चित्रों की अपेक्षा उक्त चित्रों के प्रस्तुतीकरण की यह सम्पूर्ण प्रगति मुगल कला से सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण ही प्रतीत होती है।

कागदीय परम्परा एवं चित्रगत वैशिष्ट्य

ताड़पत्रीय चित्र–परम्परा के पश्चात् हम ऐसे युग में पहुँचते हैं जब भारत में ताड़पत्रों के स्थान पर कागज का प्रयोग होने लगा था। कागज यद्यपि भारत में बहुत पहले आ चुका था, किन्तु ग्रन्थ–निर्माण कार्य में कागज का उपयोग 14वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ ऐसा माना जाता है। दुर्भाग्य है कि कागज की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भारत में अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं होतीं। उनमें से कुछ पाण्डुलिपियाँ तो अत्यधिक सम्पन्न है। जो कि किनारों अर्थात् हाशियों पर सुन्दर अलंकरण के साथ ही स्वर्णाक्षरों से लिखी हुई हैं। अधिकतर चित्रों में नीले और सुनहरे रंग का प्रयोग किया गया है। यह कदाचित् फारसवासियों से सम्बन्धों का प्रभाव था। कागदीय पाण्डुलिपियों के अन्तर्गत यू.पी. शाह ने आरम्भिक चित्रित पाण्डुलिपि 1346 ई. की 'कल्पसूत्र' एवं 'कालकाचार्यकथा' को माना है[18], किन्तु मोतीचन्द्र ने शैलीगत आधार पर इसे 15वीं शताब्दी की पाण्डुलिपि माना है।

इस प्रकार विभिन्न लेखों के आधार पर प्राचीनतम हस्तलिखित चित्रित पाण्डुलिपि 1366 ई. की 'कालकाचार्य–कथा' निश्चित होती है। यह पाण्डुलिपि प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई में सुरक्षित है। इसमें मात्र तीन चित्र हैं जिनमें एक देवता को बैठे हुए सम्मुख मुद्रा में अंकित किया गया है। 1367 ई. की एक अन्य पाण्डुलिपि का उल्लेख मिलता है, जो मुनि जिनविजय जी के अधिकार में थी। मुनि जिनविजय जी इसे कागदीय पाण्डुलिपियों में प्राचीनतम मानते थे। इसमें मात्र आठ चित्र 7.5ग5 सेण्टीमीटर आकार के हैं। (चित्र–3) 1370 ई. की 'कल्पसूत्र तथा कालकाचार्य–कथा' की एक प्रति उज्जमफोई धर्मशाला, अहमदाबाद के भण्डार में है। अहमदाबाद के एल.डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी के संग्रह में 1396 ई. की एक पाण्डुलिपि 'शान्तिनाथ–चरित' की है। इसे चित्र शैली के आधार पर यू.पी. शाह 1440 ई. की तथा डॉ. मोतीचन्द्र 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की मानते हैं।

कागज पर लिपिबद्ध प्रारम्भिक जैन पाण्डुलिपियों में सर्वोत्तम 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' की एक पाण्डुलिपि प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम में सुरक्षित है, जो वेश–भूषा के आधार पर 14वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की प्रतीत होती है। इसके चित्रों में कालक को सहारा देने वाले साहियों की चेहरों की प्रेरणा 14वीं शताब्दी के फारसी चित्रों से ग्रहण की गई है। जैन चित्रकला के विकास में उल्लेखनीय योगदान देने वाली 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' की एक अन्य प्रति जैसलमेर–भण्डार में है, जिसका समय 14वीं शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्ष माना गया है। इसमें लगभग 8.8 सेण्टीमीटर आकार के, तैंतीस चित्र हैं।[20] चित्रों में लाल रंग की पृष्ठभूमि पर सोने व चाँदी के रंगों का उपयोग किया गया है। (चित्र–4) 1404 ई. की एक दिगम्बर जैन पाण्डुलिपि 'आदिपुराण' का उल्लेख डॉ. दोषी ने किया है। कलात्मक दृष्टि से उच्च श्रेणी की एक पाण्डुलिपि 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' 1415 ई. की है इसका 'कल्पसूत्र' वाला भाग कलकत्ता के 'बिड़ला संग्रह' में तथा 'कालकाचार्य' वाला भाग बम्बई के पी.सी. जैन के संग्रह में है। 1420 ई. में दिगम्बर जैन ग्रन्थ 'महापुराण' चित्रित किया गया, जो इस समय दिगम्बर जैन मंदिर, पुरानी दिल्ली में सुरक्षित है। (चित्र–5,6) 1427 ई. में रचित 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' की एक पाण्डुलिपि इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में है।[21] 1439 ई. में सुल्तान महमूद शाह खिलजी के राज्यकाल में रचित 'कल्पसूत्र' की एक चित्रित पाण्डुलिपि माण्डु से प्राप्त हुई है, इस समय वह राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित है। 1464 ई. के लगभग चित्रित 'कल्पसूत्र' की एक अन्य प्रति ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में संगृहीत है। 1465 ई. में हुसैन शाह शर्की[22] के राज्यकाल में जौनपुर (उत्तर प्रदेश) में चित्रित 'कल्पसूत्र' राजस्थानी चित्रशैली से प्रभावित उच्चकोटि की पाण्डुलिपि है। इसके चित्रों में कुछ नारी आकृतियों को समकालीन वेशभूषा में दर्शाया गया है। उपर्युक्त पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त डॉ. कुमार स्वामी ने कुछ अन्य पाण्डुलिपियों का भी उल्लेख किया है। इनमें 1497 ई. में चित्रित 'कल्पसूत्र– कालकसूरि–कथानकम्' भी है। 1566 ई. में चित्रित 'रतनसार' की एक पाण्डुलिपि भी उपलब्ध हुई है। हटमैन के लेख[23] के आधार पर भी कुमार स्वामी ने विभिन्न संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों में संगृहीत 'कल्पसूत्र' की कुछ पाण्डुलिपियों का उल्लेख किया है।

1. फ्रीयर आर्ट गैलरी, वाशिंगटन ।
2. 'फर वोल्कर कुन्दे' का संग्रहालय, बर्लिन।
3. रॉयल लाइब्रेरी, बर्लिन।
4. नाहर संग्रहालय, कलकत्ता ।

5–6 पाटन और जैसेलमरे के अनके जैन ग्रन्थ भण्डार।

'कल्पसूत्र' की उक्त सभी पाण्डुलिपियो ं का रचनाकाल डॉ. कुमार स्वामी न` चित्र–शैली के आधार पर 15वीं शताब्दी से पूर्व तथा 15वीं शताब्दी निश्चित किया है–

त्र 4: तीर्थंकर का पंच–मुष्टि लोच, कल्पसूत्र–कालकाचार्य कथा,
चौदहवीं शताब्दी का अंतिम भाग, कागदीय पाण्डुलिपि, जैसलमेन भण्डार

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

कागदीय पाण्डुलिपियों के चित्रों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि लेखन और चित्रण के लिए कागज का उपयोग होने से पाण्डुलिपियों की शैली में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुजराती शैली के पाण्डुलिपिकों व चित्रकारों ने भड़कीली अलंकरण–योजना में तथा रंगीन भूमि पर सुनहरे व रुपहले रंगों से कथा को लिखना व चित्रित करना श्रेष्ठ समझा। कागज के प्रयोग से पत्रों का आकार अपेक्षाकृत वृहद् हो गया। इस कारण चित्रकारों को भी चित्रण के लिए स्थान अधिक मिल गया। यद्यपि चित्रकारों का ध्यान तीर्थंकरादि की जीवन–गाथा के चित्रण पर ही मुख्यतः केन्द्रित था तथापि उन्होंने तत्कालीन स्थापत्य कला का पुनरंकन, वेशभूषा के चित्रण सदृश सादे ढंग से करने का यत्न किया। दृश्य–चित्र को चित्रित करने का उनका ढंग सामान्यतः आलंकारिक था। उनका मुख्य उद्देश्य कथा–प्रसंगों को समुचित रूप से चित्रित करना था। इसके लिए उन्होंने ऐसी किसी नवीन रीति या पद्धति को नहीं अपनाया जो कि उनके कलाक्षेत्र से बाहर थी। यह कला रेखाचित्रण मात्र थी।

इस समय से जैन कलाकारों द्वारा निर्मित चित्रों में अपार शान्ति और विश्रान्ति का भाव परिलक्षित होता है। इनमें तत्कालीन लोक–कला तीर्थंकरों आदि के जीवन–चरित के आधार पर सच्चे अर्थों में अभिव्यक्त हुई है, जैनकला में लोक–कला का सम्मान इसलिए हुआ कि एक तो यह धार्मिक सीमाओं में बँधी रही और दूसरे, यह राजाओं के विलासमय वातावरण से अछूती रही। गुजरात प्रदेश के दिल्ली के आधीन हो जाने से एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान का मार्ग खुल जाने से 14वीं–15वीं शताब्दी की अपभ्रंश शैली के चित्रों में ईरानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ– अहमदाबाद से प्राप्त 'कल्पसूत्र' एवं 'कालकाचार्यकथा' के चित्रों में आकृतियाँ ईरानी शैली से प्रभावित हैं। वस्त्र–विन्यास और साज–सज्जा भी ईरानी है। आलेखन सजीव और भावपूर्ण है। अतः नई संस्कृति के संसर्ग का प्रभाव इन चित्रों पर परिलक्षित होता है जिससे कि कला को नया जीवन मिला।

सन्दर्भ सूचि–

1ण डॉ. नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 78
2ण आचार्य परशुराम उत्तर भारत की सन्त परम्परा पृ.123
3ण ए.घोष : द डेवलपमेण्ट ऑफ जैन पेंटिंग , आरटीबुस एशियाई, 1927, पृष्ठ सं. 187
4ण डब्ल्यु नॉर्मन ब्राउन : 'अर्ली श्वेताम्बर जैन मिनिएचर', जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट एण्ड लैटर–3, (सं.–1) 1939, पृष्ठ सं. 16–17
5ण आनन्द कुमार स्वामी : नोट्स ऑन जैन आर्ट, जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट एण्ड इण्डस्ट्री, (सं.–16) 1914, पृष्ठ सं. 127
6ण जे.एस. कुदालकर : द जैन मैन्यूस्क्रिप्ट्स भंडारस ऐट पाटन : ए फाइनल वर्ड ऑन दयेर सर्च, एनअुल रिपोर्ट ऑफ द भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट –31, (सं.–1), 1922,
7ण पृष्ठ सं. 35–52
8ण मोतीचन्द्र : जैन मिनिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम वेस्टर्न इण्डिया, अहमदाबाद, 1949, पृष्ठ सं. 2–3
9ण कस्तूरचन्द कासलीवाल : जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, जयपुर, 1967, पृष्ठ सं. 2
10ण हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, जयपुर, 2003, पृष्ठ सं. 287
11ण कार्ल खण्डालावाला व सरयू दोशी : मिनिएचर पेंटिंग्स, जैन आर्ट एण्ड आर्कीटैक्चर, (भाग–3) दिल्ली, 1975, पृष्ठ सं. 396
12ण इॅन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना (वॉल्यूम – 18) पृष्ठ सं. 242
13ण कार्ल खण्डालावाला, मोतीचन्द व प्रमोदचन्द : मिसिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम द श्री मोतीचन्द खजांची कलैक्शन, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 1960, पृष्ठ सं. 9

14ण आनन्द कुमार स्वामी : जैन पैंटिंग्स, कैटेलॉग ऑफ इण्डियन कलवे शन्स इन द म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स बोस्टन, 1924, पृष्ठ सं. 32

15ण रामनाथ : मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, जयपुर, 1973, पृष्ठ सं. 3

16ण ए. घोष : जैन आर्ट एण्ड आर्कीटवे चर, (भाग–3) दिल्ली, 1975, पृष्ठ सं. 402, चित्र सं.–265

17ण सरयू दोषीः टव्ेल्थ सैन्चूरी इल्स्ट्रटेेड मैन्यूस्क्रिप्टस् फ्रॉम मडू बिद्रि; बुलेटिन ऑफ द प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, (भाग–8) बम्बई, 1962–64, पृष्ठ सं. 29–36

18ण अमलानन्द घोष (सम्पादक): जैन कला एवं स्थापत्य, (भाग–3) दिल्ली, 1975, पृष्ठ सं. 410

19ण रामनाथः मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, जयपुर, 1973, पृष्ठ सं. 4

20ण मुल्कराज आनन्दः जैन मिनिएचर्स, एन एलबम ऑफ इण्डियन पेटिंग स, दिल्ली, 1973, पृष्ठ सं. 59–60

21ण मोतीचन्द व यू.पी. शाहः न्यू डाक्यूमैन्ट्स ऑफ जैन पेटिंग स, श्री महावीर जैन विद्यालय, गोल्डन जुबली वोल्यमू , बम्बई, 1968, पृष्ठ सं. 375

22ण मोतीचन्द व यू.पी. शाहः न्यू डाक्यूमैन्ट्स ऑफ जैन पेटिंग स, श्री महावीर जैन विद्यालय, गोल्डन जुबली वोल्यमू , बम्बई, 1968, पृष्ठ सं. 13

23ण कार्ल खण्डालावाला व सरयू दोषीः मिनिएचर पेटिंग स फ्रॉम द श्री मोतीचन्द खजांची कलैक्शन, ललित कला अकादमी, नई

दिल्ली, 1960, पृष्ठ सं. 9